ISSN-2394-6326
Journal de Brahmavart

तेरहवीं से सत्रहवीं शताब्दी के मध्य पश्चिम भारत की नारी संत कवि परम्परा

डॉ0 आदेश गुप्ता
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, इतिहास विभाग,
पं0 जे0एल0नेहरु पी0जी0 कॉलेज,बाँदा,उ0प्र0

तेरहवीं से सत्रहवीं शताब्दी के मध्य पश्चिम भारत की नारी संत कवि परम्परा, मध्य काल में नारी संतों के भक्ति परम्परा में योगदान के परिप्रेक्ष्यों को जानने का प्रयास मात्र है। मध्यकालीन नारी संत कवि परम्परा का अध्ययन न सिर्फ नारी संतों का अध्ययन है बल्कि यह सम्पूर्ण मध्यकालीन नारी और उसकी मनःस्थिति का विवेचना है। भारत में नारियों ने विभिन्न आयामों में अपने आपको स्थापित किया है। इसी क्रम में नारी संत परम्परा भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि भक्ति परम्परा के वहन का एकाधिकार पुरुष वर्ग के पास ही सुरक्षित था और नारियों को इस हेतु उपयुक्त नहीं समझा जाता था। अनेक स्त्री संतों ने इस वर्जना को तोड़ते हुए अपने आपको स्थापित कर लोकप्रियता पायी। नारी की स्थिति का आंकलन राजनैतिक, सामाजिक आर्थिक एवं धार्मिक दृष्टिकोणों पर वि" ोश अध्ययन किया गया है। पुरुष संतों द्वारा स्त्रियों के प्रति जो दृष्टिकोण अपनाया गया उसे भी विश्लेषित कराना आव" यक ह। मध्यकालीन सामाजिक परिवेश में परिवर्तन के चिन्ह स्पष्ट दृश्टिगोचर होते हैं। तुर्कों के आक्रमण में भारत पराजित हुआ जिसके फलस्वरूप सामाजिक परिस्थितियों में बदलाव आया। सामाजिक बन्धन और जटिल हो गये। हिन्दू समाज जातिवाद और भेदभाव की भावना से प्रभावित था। एकता एवं समानता की भावना समाज में नहीं थी। मध्यकाल के आरम्भ से ही इस व्यवस्था में अनेक जटिलताएं दिखाई देने लगी थीं। इसके कारण ब्राह्मणों को समाज में ऊँचा स्थान प्राप्त हो गया था एवं निम्न जाति के लोगों को हेय दृष्टि से देखा जाता था। तुर्क–आक्रमण के समय वर्ण व्यवस्था अपनी चरम सीमा पर पहुंच गयी थी। अल–बरूनी लिखता है कि केवल ब्राह्मणों को मोक्ष प्राप्त करने का अधिकार था। वर्णव्यवस्था ने लोगों की विचारधारा को संकुचित कर दिया और उनमें बाहरी आदान–प्रदान के लिये स्थान न रहा।

हिन्दू समाज मूलतः जाति स्तर पर चार भागों में विभक्त था। जाति का निर्धारण जन्म से था और सामान्यतः हिन्दू समाज में लम्बवत सामाजिक गतिशीलता का अभाव था। इनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जाति के लोग शामिल थे। इसके अतिरिक्त अनेक उपजातियां भी थीं जो सभी एक दूसरे से पृथक थीं और जिनमें सहभोज और पारस्परिक विवाह सम्बंध का सर्वथा अभाव था। इसके साथ ही समाज में 'अंत्यज' होते थे, इनकी स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। इन्हें अस्पृश्य और अपवित्र समझा जाता था। वे किसी न किसी कारीगरी या पेशे से जुड़े होते थे। इनके कोइ सांस्कृतिक रीति – रिवाज नहीं थे, न ही कोई संस्थागत एकता थी। इन्हें मन्दिरों में प्रवेश की अनुमति नहीं थी और उनके विरुद्ध अनेक प्रकार की सामाजिक निर्योग्यताएं बनी हुई थीं। निःसन्देह इस्लाम निरपेक्ष भाव से समाज के जातीय चरित्र अथवा वर्गीय चरित्र का निषेध करता है किन्तु मध्यकालीन भारतीय मुस्लिम, किन्तु मुस्लिमों के गांवों में प्रवेश तथा मुस्लिम कर्मचारियों की वहां स्थायी उपस्थिति से ग्रामीण महिलाओं की दशा और भी बुरी तरह प्रभावित हुई।

मध्यकाल में महिलाओं की स्थिति संतोषजनक नहीं थी यद्यपि शासक वर्ग के स्तर पर मुस्लिम व हिन्दू समाजों में विदुषी एवं प्रभावशाली महिलाओं के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं। सल्तनत काल में इल्तुतमिश की पुत्री रजिया 1236–40 ई0

ISSN-2394-6326
Journal de Brahmavart

दिल्ली के सिंहासन पर बैठने वाली एकमात्र स्त्री थी। इल्तुतमिश अपने पुत्रों की योग्यता के बारे में सशंकित था, अतः उसने रजिया सुल्तान को योग्य उत्तराधिकारी मानते हुए शासक नियुक्त किया। वह बुद्धिमान एवं साहसी शासिका थी। जहाँगीर के शासन काल 1605–27 ई0 में नूरजहाँ का राजनीति में हस्तक्षेप था। इसका कारण जहाँगीर का व्यक्तिगत रूप से आराम–तलब और विलासी होना था। न्रजहाँ फारस के बहिष्कृत सामन्त मिर्जा ग्यास बेग की पुत्री थी। उसका वास्तविक नाम 'मिहर–उन–निसा बेगम' था, जिसे जहाँगीर ने 1611 ई0 में विवाह के साथ ही पहले नूरमहल और फिर नूरजहाँ के खिताब से अभिहित किया। नूरजहाँ ने अपने बुद्धि कौशल एवं वाक्–चातुर्य के बल पर न केवल जहाँगीर के हृदय अपितु अप्रत्यक्ष रूप से साम्राज्य पर भी शासन किया। जहाँआरा की छोटी बहिन रोशनआरा का भी राजनीति में प्रभाव था। उसने उत्तराधिकार के युद्ध में औरंगजेब का समर्थन किया था। इसके अतिरिक्त गुलबदन बेगम, हमीदाबानो बेगम और जैबुन्निसां अपनी विद्वता के लिए प्रसिद्ध हैं। गुलबदन बाबर की बेटी थी और उसने 'हुमायूंनामा' की रचना की।

भारत की मुस्लिम नारियों में चांदबीबी 1547–1599 ई0 अद्वितीय स्थान रखती हैं। वे अहमदनगर के हुसैन शाह की पुत्री थीं और उनका विवाह बीजापुर के राजघराने में हुआ था। जब 1580 इ0 में उनके पति अली आदिलशाह की हत्या कर दी गई, तो इब्राहिम आदिलशाह की संरक्षिका के रूप में शासन की पूरी बागडोर उनके हाथ में आ गई। सम्पूर्ण मध्यकाल हिन्दुओं के लिए पराभव का काल था तथापि कुछ स्त्रियों ने उत्तरोत्तर अवनति के इस काल में भी अपने उच्च आदर्श प्रशासनिक क्षमता एवं सैन्य संचालन की योग्यता से सबको प्रभावित किया। यह आश्चर्यजनक बात है कि हिन्दू स्त्रियां ऐसे समय में स्वयं को सफल शासिका सिद्ध कर रही थीं, जबकि उनका सामान्य सामाजिक स्तर गिर गया था। उत्तर से दक्षिण एवं पूर्व से पश्चिम तक ऐसी स्त्रियों के अनेक उदाहरण भारतीय इतिहास में उपलब्ध हैं। जीजाबाई 1594–1674, अहमदनगर के सरदार जाधवराव की पुत्री और पूना व सूपा के जागीरदार मालोजी के पुत्र शाहजी की पत्नी थीं। उनके पिता मुगल शासकों के पक्षधर थे और पति निजाम के दृढ़ समर्थक। जीजाबाई को पिता और पति के बीच कर्त्तव्य का चुनाव करना था, उन्होंने पति का पक्ष ग्रहण किया। शाहजी की अनुपस्थिति में पूना की जागीर का प्रबन्ध उन्हीं के हाथ में था। कर्त्तव्य निर्वाह का उनका दृढ़निश्चय, साहस, धैर्य और आत्मसम्मान उनके चरित्र के वे महान गुण थे जिनका उन्होंने अपने पुत्र और मराठा शक्ति के उन्नायक शिवाजी में पूर्णतया आरोपण किया। ताराबाई 1675–1761 ई0 हम्बीरराव मोहिते की पुत्री और शिवाजी के पुत्र राजाराम की पत्नी थीं। वे राजाराम से अधिक योग्य मानी जाती थी। बुद्धिमत्ता और प्रशासकीय गुणों से सम्पन्न ताराबाई महत्वाकांक्षी महिला थीं। इन्दौर की अहिल्याबाई होल्कर 1735–95 ई0 एक कुशल प्रशासिका थीं। वे अल्पायु में ही विधवा हो गईं थीं। ससुर मल्हारराव की मृत्यु के पश्चात् वे अपने पुत्र मालेराव की संरक्षिका नियुक्त की गईं। मालेराव की मृत्यु के पश्चात राज्य का सम्पूर्ण प्रबन्ध उनके हाथ में आ गया। इनकी चरित्र विषयक समीक्षा करते हुए कहा जा सकता है कि वे अपने सीमित क्षेत्र में अत्यन्त पवित्र एवं आदर्श शासक थीं।

गोंडवाना साम्राज्य की स्वामिनी दुर्गावती केवल अपनी जन्मभूमि हेतु आत्मोत्सर्ग करने वाली वीरांगना ही नहीं थीं, प्रत्युत शासन और राजनीति में भी निपुण थीं। उसने अपने पुत्र वीर नारायण की संरक्षिका के रूप में साम्राज्य की बागडोर संभाली। मध्यकालीन भारत में नारी का सामाजिक जीवन अत्यन्त उपेक्षा एवं विषमताओं का पर्याय है। राजनीतिक अस्थिरता

ISSN-2394-6326
Journal de Brahmavart

एवं पराभव के युग में सबसे त्रासद स्थिति महिलावर्ग की ही होती है। अतः ऐसी अराजकतापूर्ण स्थिति से स्त्रियों की रक्षा के लिए और इनके जीवन को सुरक्षित बनाने के लिए आवश्यक था कि उसे घर की चारदीवारी में बन्दी बनाकर रखा जाय। इस प्रकार की राजनीतिक परिस्थितियां नारी के सामाजिक जीवन क्षेत्र को संकुचित बनाने का प्रधान कारण बनी।

मध्यकाल में भी पुत्र का जन्म बहुत अधिक वांछनीय था जबकि पुत्री का जन्म शोक का विषय था। समाज में बाल विवाह की प्रथा प्रचलित थी। कन्या के माता पिता उसका विवाह छः से आठ वर्ष तक की आयु में कर देने की कोशिश करते थे। भारत के अधिकांश भागों में व्याप्त बहुविवाह प्रथा ने महिलाओं की स्थिति को और अधिक दयनीय बना दिया था। हिन्दू और मुसलमान दोनो में यह प्रथा समान रूप से प्रचलित थी। महिलाओं के सामाजिक शोषण के पीछे एक मूल कारण था, उनमें शिक्षा का अभाव। उनकी शिक्षा के लिए अलग से कोई प्रबंध नहीं था। पर्दा–प्रथा ने महिलाओं की परम्परागत भूमिका को और मजबूत किया। मध्य काल के दौरान स्त्रियों को एकान्त में रखने एवं बाहरी व्यक्तियों के सामने अपने चेहरे को ढककर रखने की प्रथा उच्चवर्गीय हिन्दू स्त्रियों के बीच प्रचलित हो गई थी। वेश्यावृत्ति सामाजिक जीवन का अभिन्न हिस्सा हो गई थी। मध्य युग की विलाश–वासना जन्य प्रवृत्ति के कारण वेश्याओं की संख्या बढ़ती गई। मुस्लिम शासकों की हरम प्रथा से भी इसे प्रोत्साहन मिला। सम्मानित महिला का जीवन उसके पति की मृत्यु के साथ समाप्त हो जाता था। प्रचलित विश्वास के विपरीत सती प्रथा राजपूताना अथवा उत्तर भारत में ही नहीं अपितु दक्षिण भारत में भी व्याप्त थी। अनेक विदे" ाी यात्री देश के विभिन्न भागों में इसके प्रचलन का उल्लेख करते हैं। जौहर प्रथा का प्रचलन राजपूत वर्ग की स्त्रियों में था। शत्रु द्वारा आक्रमण किये जाने पर पराजय होने की आशा पर राजपूत स्त्रियां जौहर द्वारा प्राणोत्सर्ग करती थीं। मध्य युग में नारी की आर्थिक दशा बहुत अच्छी नहीं थी। शिक्षा से रहित, घर की चहारदीवारी में कैद नारी के व्यक्तित्व के विकास एवं धन की दृष्टि से आत्मनिर्भरता के लिए विशेष अवसर नहीं थे। मध्यकाल में स्त्रियों के सम्पत्ति के अधिकार के विषय में अधिक जानकारी नहीं मिलती, लेकिन इतना निश्चित है कि वे इस संदर्भ में पुरुषों के समकक्ष नहीं थीं।

स्त्रियों सामाजिक और धार्मिक स्थिति का बड़ा दूरगामी प्रभाव परवर्ती काल में प्रचलित अनेकानेक व्रत उपवासों में उन्होंने अपने को संलग्न कर लिया। अल्तेकर के मत से तो वे इन पौराणिक व्रतों और उपवासों की एक मात्र संरक्षिका थीं। इसी समय भक्ति मार्ग सर्वसुलभ एवं लोकप्रिय हो रहा था। यही भक्ति इस युग में स्त्रियों की आराधना का दृढ़ अवलम्ब बनी। इसी का सहारा लेकर अनेक संत कवित्रियों ने जीवन आर जगत के सत्य से साक्षात्कार किया। उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक अनेकानेक नारी संतों की दीर्घकालिक परंपरा रही है। रूढ़ियों से दबे हुए व्यक्तित्व में आध्यात्मिकता का अंकुर फूट पड़ा। घर–द्वार एवं संसार का त्याग करके पूर्ण समर्पण की भावना से साधना पथ पर चलती हुई नारी संत जीवन के परम तत्व को प्राप्त करती हैं, जिसका प्रमाण इनकी कविताओं में निहित है।

पुरुष संतों का स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण

मध्यकाल में पुरुष संतों द्वारा स्त्रियों के प्रति जो दृष्टिकोण अपनाया गया वह सारे समाज के रुख को प्रकट करता है। पुरुष संत स्त्री को बंधन स्वरूप मानते थे। यह बंधन घर, परिवार एवं सांसारिक भोगों का था, जिसका प्रमुख कारण स्त्री मानी गई। भौतिकता एवं आध्यात्मिकता में संघर्ष का कारण स्त्री का आकर्षण ही है। अतः उनकी भर्त्सना और उपेक्षा के बिना पुरुष की उच्छृंखल प्रवृत्ति को बांध सकना असम्भव था नारी का जो बाधक चित्र उन्होंने खींचा उसमें उसके कामिनी रूप की ही प्रधानता थी।

ISSN-2394-6326
Journal de Brahmavart

मध्यकाल में नारी की स्थिति का आकलन करते समय इस तथ्य को अनदेखा नहीं किया जा सकता कि उसे भक्ति एवं ज्ञान प्राप्त करने की स्वतन्त्रता थी। वे गुरु के सानिध्य में आध्यात्मिक अनुभवों को प्राप्त करती थीं। इस आध्यात्मिक मार्ग ने एक महिला की काम वासना को रोकने का साधन माने जाने वाले त्रिविमीय बन्धन परम्परा, रूढ़िवादिता और रीति रिवाजों को तोड़ने में अत्यधिक सहायता की। एक संत के रूप में वह सामान्य सीमाओं का उल्लंघन कर सकती थी। भारत में संत परम्परा का उद्भव निश्चित रूप से कब हुआ? यह कहना कठिन है। परन्तु शंकराचार्य के काल से संत परम्परा का निश्चित स्वरूप बनना प्रारम्भ होता है जो दक्षिण के भक्त संत अलवारों एवं नयनारों में पुष्ट रूप में प्रकट होता हुआ चौदहवीं–पन्द्रहवीं शताब्दी में अपने चरम पर पहुंचता है।

संत एवं भक्ति परम्परा का उद्भव दक्षिण में हुआ, जिसकी सरस धारा धीरे–धीरे उत्तर की ओर आती हुई सम्पूर्ण भारतीय जनमानस को अपने में सराबोर करती चली गई। मुख्य रूप से यह उत्तर प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र से लेकर बंगाल, असम और उड़ीसा तक फैल गया। इस भक्ति आन्दोलन ने संतों के एक नये वर्ग को जन्म दिया जिसके अगुवा कबीरदास कहे जा सकते हैं। इन संतों ने एक ओर भक्ति के आधारभूत तत्वों के बीच सामंजस्य एवं सद्भाव स्थापित किया तथा दूसरी ओर भारतीय रहस्यवादी धारणाओं एवं सूफो साधना की रहस्यवादी धारणाओं के मध्य सामंजस्य भी स्थापित किया। इन्होंने मुस्लिम सूफियों के सिद्धांतों को अपने बहुत निकट पाया। परिणामस्वरूप भेदभाव को समाप्त करने का प्रयास सार्थक सिद्ध हुआ।।मध्य काल में देश के विभिन्न भागों में फैले हुए सम्पूर्ण भक्ति आन्दोलन में ईश्वर के प्रति प्रेम और समर्पण की भावना अत्यन्त व्यापकता के साथ विद्यमान थी। साथ ही यह आन्दोलन आंतरिक रूप से वैविध्य परक था, उसमें हमें दो भिन्न–भिन्न धारणाएं दृष्टिगोचर होती हैं, निर्गुण संत परम्परा एवं सगुण संत परम्परा। निर्गुण संतों ने पभु की भक्ति निराकार रूप में करने पर जोर दिया और एकेश्वरवाद का प्रचार किया जबकि सगुण विचारधारा के संतों ने अपने इष्टदेव की भक्ति या सगुणोपासना पर बल दिया। कुछ संतों ने राम और कुछ संतों ने कृष्ण को अपना इष्टदेव माना। निर्गुण भक्ति धारा के संतों म कबीर, दादू और नानक आदि प्रमुख हैं जबकि सगुण संतों में सूर, तुलसी, मीरा, चैतन्य आदि प्रमुख हैं। भक्ति आन्दोलन के संतों में सभी जातियों के लोग थे। इन संतों ने अपने मत को लोकप्रिय बनाने के लिए क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग किया।

इस प्रकार भक्ति आन्दोलन मध्यकाल की प्रबल विशेषता थी। यह दक्षिण में हिन्दू भक्ति पंथ के साथ छठी–सातवीं शताब्दी में प्रारम्भ हुआ और धीरे–धीरे सम्पूर्ण भारत में फैल गया। यह आन्दोलन सोलहवीं–सत्रहवीं शताब्दी तक प्रभावकारी रहा। इनमें से अनेक सम्प्रदाय धर्मभीरु तथा अन्तःसामाजिक उथल– पुथल को प्रतिबिम्बित करने वाले थे। भारत में यह आन्दोलन बड़े पैमाने पर धार्मिक संस्कारों के वंशवाद तथा ब्राह्मवादी श्रेष्ठता के बहिष्कार के रूप में पहचाना जाता है, क्योंकि इसमें विद्वानों की भाषा संस्कृत के होते हुए भी लोकभाषाओं का प्रयोग किया गया तथा महान संतों के रूप में निम्न जाति के अशिक्षित लोगों का भी उदय हुआ। इस आन्दोलन में कृषक वर्ग, शिल्पी वर्ग तथा अन्य निम्न वर्गों के साथ–साथ धार्मिक कर्मकाण्डों की दृष्टि से निम्न किन्तु धन की दृष्टि से सम्पन्न वर्गों जैसे व्यापारियों तथा शिल्पियो ने भी बड़े पैमाने पर भाग लिया।

महिला संतों का उदय

मध्यकालीन भारतीय समाज में महिला संतों का उदय भेदभाव व उत्पीड़न के वातावरण में हुआ किन्तु वे विचारक, विद्वान, आध्यात्मिक

रूप से उन्नत तथा उन्मुक्त चिंतक की तरह सामने आयीं। उनका जीवन तथा कार्य आत्माभिव्यक्ति का उत्कृष्ट स्वरूप उपस्थित करते हैं। एक पत्नी, पुत्री व मां के रूप में स्वीकृत उनकी परम्परागत भूमिका को छोड़ते हुए इन महिला संतों ने जाने–अनजाने स्वयं को सामाजिक व्यवहार के स्थापित आदर्शों से पृथक कर लिया तथा परिवार और समाज द्वारा लगाये गये बन्धनों को लात मार दी। केवल उनकी रचनायें ही इसका प्रदर्शन नहीं करतीं अपितु उनका उदय होना ही अपने आप में एक सामाजिक विद्रोह था। आठवीं सदी की तमिल संत करैक्काल अम्मैयार, जिसे नयनार आन्दोलन के प्रारम्भिक गीत सामान्यतः समर्पित है समेत मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन में नारी संत कवियों की एक लम्बी श्रृंखला है, जो कुछ शताब्दियों में क्रमशः अस्तित्व में आयीं। सर्वप्रथम ये आठवीं सदी के आलवार आण्डालय एवं नयनार, अद्वैतवाद आदि दक्षिण भारत के आन्दोलनों में प्रकट हुई तत्पश्चात बारहवीं सदी में कर्नाटक के वीरशैव सम्प्रदाय (अक्का महादेवी) में बारहवीं से सत्रहवीं सदी में चरणबद्ध रूप से महाराष्ट्र के वारकरी (मुक्ताबाई, जनाबाई, बहिनाबाई आदि) एवं महानुभाव महदैसा या महदंबा मत में बाद में पन्द्रहवीं व सोलहवीं सदी में पश्चिम व उत्तर भारत के राजस्थान (मीराबाई), गुजरात (गंगासती) कश्मीर (लालदेद एवं रूप भवानी), बंगाल (चन्द्रबती) आदि में नारी संतों का प्रादुर्भाव हुआ।

निःसन्देह महिला संतों की रचनायें सांसारिक वस्तुओं से छुटकारा तथा आध्यात्मिक सिद्धि की उनकी चाह को प्रदर्शित करती हैं, किन्तु साथ ही वे समाज से उनके दुराव तथा अकेलेपन का भी प्रदर्शन करती हैं। अधिकतर महिला संतों में जाति के बंधन प्रबल रूप से मानसिक दबाव नहीं डाल सके। यहां तक कि ब्राह्मण एवं विचारशील बहिनाबाई ने निम्न जाति के तुकाराम को अपना गुरु बनाया। राजपूत परिवार की मीरा ने अछूत रैदास को अपना आदर्श गुरु माना। निम्न जाति की जनाबाई एक अभंग में आनन्दपूर्वक गाती हैं कि किस प्रकार निम्नजातीय जाति बहिष्कृत संत चोखमेला जाति से महार ने भगवान को भी जाति बहिष्कृत बना दिया। उसकी भक्ति से प्रभावित होकर भगवान उसके नौकर बन गये और उसके साथ भोजन किया।

महाराष्ट्र में मराठी महिला संत परम्परा का प्रथम चरण तरहवीं से अठारहवीं शताब्दी तक है। इन छः शताब्दियों में हम महिला संतों की लम्बी श्रृंखला पाते हैं। इनमें एक के बाद दूसरी संत का आगमन आश्चर्यजनक ढंग से निरन्तरता के साथ हुआ है। इनमें से कुछ महिला संत गृहस्थों के मध्य सुविख्यात हैं एवं पूजी जाती हैं। महाराष्ट्र की महिला संतों के महत्व को समझने के लिए वारकरी परम्परा की ओर रुख करना होगा। सम्पूर्ण महाराष्ट्र में विशेषतः ग्रामीण क्षेत्रों में वारकरी और इसकी परम्परा जनसामान्य के लिए प्रेरणा एवं शक्ति का स्रोत बनी हुई है।

महाराष्ट्र में भक्ति आन्दोलन एवं संतों के पादुर्भाव में प्रमुख भूमिका वहां की राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों ने निभाई। इतिहास में महाराष्ट्र का भू–भाग, उत्तर तथा दक्षिण भारत का मध्य क्षेत्र होने का कारण अपनी विशिष्ट पहचान रखता है। मध्यकालीन मराठा सामाजिक संरचना जन्म तथा जातियों में स्तरीकरण पर आधारित हिन्दू समाज का प्रतिरूप थी। सैद्धान्तिक दृष्टि से मराठा जनसंख्या चार हिन्दू वर्णों में विभाजित थी, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। तथापि कई अन्य जातियां व दूसरे समुदाय इसके भीतर दिखाई पड़ते हैं। इस काल में शासकीय वर्ग तथा ब्राह्मणों का वर्चस्व था। कृषकों में निर्धनता थी और उनका ब्राह्मणों द्वारा कर्मकाण्डीय शोषण किया जाता था। जोशी, कुलकर्णी, देशपाण्डे तथा पण्डितों ने ग्रामीण जीवन में लेखाकार, लेखापरीक्षक, लिपिकार तथा पुरोहित के रूप में काफी ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया था।

ISSN-2394-6326
Journal de Brahmavart

महाराष्ट की संत परम्परा में जिन सम्प्रदायों ने जनता को अधिक प्रभावित किया वे हैं–नाथ, महानुभाव, वारकरी, दत्त और समर्थ सम्प्रदाय। इनमें वारकरी सम्प्रदाय का प्रभाव सर्वव्यापक है। इसने पूर्ववर्ती नाथ सम्प्रदाय को अपने में समाहित कर लिया और परवर्तियों को इतना अधिक प्रभावित किया कि उनमें तात्विक भेद प्रायः बहुत ही कम रह गया। महाराष्ट्र में महानुभाव, वारकरी एवं समर्थ सम्प्रदाय अत्यधिक प्रचलित रहे और इनका प्रभाव जनसाधारण पर भी पड़ा। साथ ही इन सम्प्रदायों में पुरुष संतों के साथ नारी संतों की भी समृद्ध परम्परा देखने को मिलती है। महाराष्ट्र की छः ऐसी महिला संतों पर दृष्टि डालेंगे जो विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। पहली हैं महदैसा या महदंबा जिन्हें प्रथम मराठी कवयित्री माना जाता है और जो महानुभाव पंथ से सम्बन्धित थी। दूसरी हैं मुक्ताबाई जो वारकरी परम्परा के संस्थापकों में से एक हैं, तीसरी हैं जनाबाई जो एक नौकरानी थीं और जिनकी भक्ति संतों द्वारा मानवता पर विशेष ध्यान देने का उदाहरण बनी। चौथी हैं बहिनाबाई जिनके लिए भक्ति तब एक जीवन पद्धति बन गइ, जब उनके अपमानित करने वाले लोगों ने उन्हें दबाया। पाँचवीं हैं कान्होपात्रा जो एक देवदासी थीं। जिनकी मानसिक एवं शारीरिक पीड़ा उनके अभंगो मे अभिव्यक्त होती है। महदैसा को छोड़कर ये सभी वारकरी पंथ की अनुयायी थीं। छठवीं और अन्तिम हैं वेनाबाई, जो रामदासी पंथ में मिराज मठ की प्रमुख थीं।

महदंबा–यह मराठी की आदि सत कवयित्री कही जाती हैं। इनके जन्म और मरण के सम्बन्ध में निश्चित जानकारी नहीं है। महदैसा ने चक्रधर से उनके जीवन और दर्शन के बारे में बहुत से प्रश्न किये। ये व्यक्तिगत प्रश्न 'महानुभाव इतिहास' और 'लीलाचरित' में संकलित हैं। इनकी गुरु भक्ति बहुत प्रबल थी तथा इन्ह अपने समय में की विदुषी समझा जाता था। इन्होंने मराठी में धवक्ते, मातृकी, रूक्मिणी–स्वयंवर, और गर्भकाण्ड ओव्या नामक ग्रन्थों की रचना की।

मुक्ताबाई, महाराष्ट्र की ख्यातिलब्ध संत कवयित्री हैं। मुक्ता जिसके नाम का अर्थ है 'स्वतंत्र' लगभग 1279 ई0 में पैठण के समोप आपेगाँव में जन्म हुआ था। वह और उनके तीन भाई निवृत्तिनाथ, ज्ञानेश्वर और सोपानदेव वारकरी परम्परा के संस्थापक माने जाते हैं। मुक्ताबाई पर लिखित शताधिक अभंग विद्यमान है। वे अपने सामाजिक दृष्टिकोण से पितृवादी व्यवस्था की परम्परागत तथा रूढ़िवादी रीतियाँ प्रस्तुत करती हैं, फिर भी उनके लेखन में जो आध्यात्मिकता है वह गैरपरम्परागत, गूढ़ व रहस्यमयी है। अन्य स्त्री संतों की तरह वह अपने स्त्रीत्व पर जोर नहीं देती। मुक्ताबाई के अनेक गीत अन्य संतो के साथ संवाद के रूप में बिखरे हुए हैं और इन वार्तालापों में वह उनसे समकक्ष की तरह बात करती हैं। उदाहरण के लिए 'निवृत्ति मुक्ति संवाद' में वह तथा निवृत्ति एक दूसरे को शिक्षा देते हैं। ताटिचे अभंग के लिए मुक्ताबाई बहुत प्रसिद्ध हैं। महाराष्ट्रीय संतों की परम्परा में मुक्ताबाई के उच्च स्थान का संकेत चोक्खमेला के पद्य में भी है। इसमें वह कामना करता है कि यदि उसका कोई पुत्र हो तो वह संत हो, और यदि कोई पुत्री हो तो वह मीराबाई या मुक्ताबाई जैसी हो अन्यथा कोई पुत्र या पुत्री न हो।

जनाबाई– मुक्ताबाई की लगभग समकालीन जनाबाई महाराष्ट्र की संत कवित्रियों में अद्वितीय स्थान रखती हैं। एक नौकरानी होने के कारण वह ऐसे संतों की श्रेणी में आती हैं जिनकी निम्न सामाजिक अवस्था उन्हे धार्मिक प्रतिष्ठानों मठ–मन्दिर आदि से दूर रखती थीं। किन्तु ऐसा माना जाता है कि ईश्वर ऐसे संतों का सहयोग धनवान तथा शक्तिशाली भक्तों की अपेक्षा अधिक करता था। बाद के संतों के पदों में जनाबाई का नाम इस श्रेणी के संतों में

ISSN-2394-6326
Journal de Brahmavart

बार–बार आया है। जनाबाई का जन्म गोदावरी के तट पर स्थित गंगाखेड़ नामक गाँव में एक शूद्र परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम दमा तथा माता का नाम कुरुंड था। नामदेव ने विठोबा के गुणगान पर एक अरब पद्यों की रचना का संकल्प लिया, लेकिन वह कार्य एक व्यक्ति के लिए बहुत कठिन था, इसलिए उन्होंने इस कार्य को अपने परिवार में बाँट दिया। जनाबाई को भी निश्चित संख्या दी गई। उसके पद्य 'नामदेवगाथा' में संकलित हैं, जिसमें नामदेव की पत्नी, माता, पुत्र तथा पुत्रियों के भी पद्य हैं। जना के पद्य औरो के पद्यों से परिमाण एवं गुण सभी दृष्टियों में बढ़कर निकले, क्योंकि वह स्वयं को प्रतिक्षण भगवान विठोबा के सानिध्य में पाती थीं। जनाबाई की कविता चिरंतन और प्रासंगिक है क्योंकि उसमें तत्कालीन स्त्री का हृदय व्यक्त हुआ ह। उनके अनेक अनुभव अन्य परिश्रमी घरेलू महिलाओं के समान ही हैं। भगवान को अनुभव करने तथा ध्यान लगाने का उनका तरीका एक ऐसा उपाय है जिससे भगवान से समरूपता सिद्व होती है और इससे आन्तरिक शक्ति आती है।

बहिनाबाई– बहिना एकमात्र महिला संत कवयित्री हैं जिसने पद्या में विस्तृत आत्म जीवन चरित्र "आत्मनिवेदन" लिखा। वह ही अकेली हैं जो एक महिला अन्वेषक की कठिन स्थितियों की अनेक दशाओं में रहीं और कुछ समाधान पाने का प्रयत्न किया। बहिना ऐसी महिला संतों में भी गिनी जाती हैं जो भक्त की जिन्दगी जीते समय विवाहित ही रही। यह विशेष रूप से कठिन था क्योंकि अन्य महिला संतों की भाँति वे किसी प्रसिद्ध भक्त परिवार से नहीं थीं। बहिनाबाई ने कुछ हिन्दी पद्यों सहित सात सौ अठ्ठाइस पद्यों की रचना की। इनमें ऐसे विषय हैं जो सामान्यतः संतों ने विश्लेषित किये हैं। वह अपने तथा संसार के स्वभाव का विश्लेषण करती हैं और सिद्ध करती हैं कि दोनों में अन्तर नहीं है। वे सन्तों की महानता का गुणगान करती हैं जो उनके अनुसार सद्गुरु हैं। ***वे ब्राह्मण की परिभाषा करती हैं जिसका आधार जाति नहीं 'ब्रह्म का ज्ञान है।'*** उसने तुकाराम जो कि निम्न जाति के थे को ही अपना गुरु स्वीकार किया। बहिनाबाई द्वारा तुकाराम को अपना गुरु स्वीकार करना और उसमें चमत्कारों का प्रकट होना पितृसत्तात्मक व्यवस्था का उल्लंघन था और उसके पति ने उसे शारीरिक एवं मानसिक यातनाएं दी। फिर भी वह अपने 'पतिव्रत–धर्म' को आश्चर्यजनक रूप से सभ्य तरीके ही व्याख्यापित करती है। "तुम भगवान को नहीं पा सकती, यदि तुम अपने पति को प्रेम नहीं करतीं" इस प्रकार बहिना इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि पुरुषों की भांति जो महिलायें सांसारिक जीवन को 'निजानंद ज्ञान' आत्मानुभूति के साथ बिताती हैं, वे ही सच्ची पत्नियां हैं। इस सच्चे मार्ग का स्त्रियों एवं पुरुषों दोनों के द्वारा अनुसरण करना आवश्यक है।

इस प्रकार बहिनाबाई ने अपने समय के सामाजिक सन्दर्भों में एवं वेदांत के प्रकाश में चरित्र निर्माण एवं मानवीयता के आदर्शों का उपदेश दिया। उनकी जीवन कथा धार्मिक दर्शन और सामान्य जीवन दोनों ही क्षेत्र में मार्गदर्शन कराती हैं। कान्होपात्रा, पन्द्रहवीं सदी की वारकरी महिला संत हैं। देवदासी (वेश्या) कान्होपात्रा लिंग के कारण ही नहीं अपितु अपने निम्न सामाजिक स्तर के कारण भी असुविधाजनक स्थिति में थी। महिपति के 'भक्तलीलामृत' और 'भक्तविजय' में उसके संत चरित्रात्मक जीवन का वर्णन मिलता है।

कान्होपात्रा का जन्म पंढरपुर के निकट 'मंगलबेढ़े' नामक गांव में श्यामा नामक वेश्या की कोख से हुआ था। कान्होपात्रा के केवल तीस अभंग मिलते हैं जो सामाजिक दृष्टिकोण से अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। यद्यपि विशद अध्ययन सामग्री का अभाव है, फिर भी निम्न स्थिति के कारण उपजी मानसिक एवं शारीरिक पीड़ा उनके अभंगों में अभिव्यक्त होती है। इस प्रकार कान्होपात्रा ने वेश्याकुल में जन्म लेकर

ISSN-2394-6326
Journal de Brahmavart

भी भक्ति मार्ग के सिद्धान्तों का पालन करते हुए अपने जीवन को सार्थक बनाया और अपने प्राणों की आहति दे दी।वेनाबाई समर्थ रामदास की शिष्या और बहिनाबाई की समकालीन थीं। इनका जन्म ब्राह्मण परिवार में हुआ था और बाल विधवा थीं। वारकरी महिला संतों की भाँति वेनाबाई के अभंगो में न तो भावातिरेक है और न ही वैयक्तिकता। वे अपनी रचनाओं 'संक्षिप्त रामायण' (1526 पद्य) तथा 'सीता स्वयंवर' (1668 पद्य) में रामदास के विचारों को प्रतिध्वनित करती हैं तथा उनसे अपने लगाव का प्रदर्शन करती हैं।

राजस्थान की मध्यकालीन राजनैतिक स्थिति में अलग–अलग क्षेत्रों में राजपूत शासकों का शासन था। मीराबाई के अविर्भाव के समय दिल्ली में लोदी वंश के सुल्तान का शासन था। उनके बाद बाहर से आकर बाबर ने भारत में मुगल साम्राज्य की बुनियाद डाली। किन्तु दिल्ली अथवा गुजरात एवं मालवा की ओर से यदा–कदा आक्रमणों के होते रहने पर भी राजस्थान पर मुस्लिमों का कोई स्थायी प्रभाव नहीं पड़ पाया। राजस्थान की संस्कृति भक्ति की वह आधारभूमि है जहाँ संतों ने भक्ति एवं प्रेम का बीज बोया और उसके फल का माधुर्य–रस वर्तमान में भी अपनी मिठास प्रसारित कर रहा है। राजस्थान की नारी संत परम्परा का मुख्य स्तंभ मीराबाई हैं साथ ही सहजोबाई और दयाबाई का योगदान भी उन्हीं की परम्परा का अनुसरण है जो न सिर्फ उस परम्परा को पुष्ट करता है वरन् नये आयाम भी स्थापित करता है। पश्चिमोत्तर भारत में मीरा एक घरेलू नाम है। वे एक ऐसी संत कवयित्री हैं जिनकी गणना भारत के महानतम संतों में की जाती है। भारतीय संस्कृति मुख्यतः स्त्रियों को उसके पुत्रों की माँ के रूप में महत्व देती है तथापि मीरा की पूजा की जाती है जो कि एक पुत्ररहित स्त्री थीं। वे सबसे उत्कृष्ट भक्त कवयित्री के रूप में सामने आती हैं। उसके गीत विभिन्न भाषाओं में गाये जाते है और कुछ गीत जीवित शाब्दिक परम्परा के महत्वपूर्ण अंग बन गये हैं। मीराबाई जोधपुर के संस्थापक सुप्रसिद्व राठौर राजा जोधा जी 1415–1488 ई0 के पुत्र राव दूदा जी 1440–1515 ई0 की पौत्री थी। राव वीरमदेव अपने अनुज रत्नसिंह की पुत्री मीरा का सम्बन्ध किसी ऊँचे घराने में करना चाहता था। अतः प्रयत्न करके उसने मीरा का विवाह मेवाड के महाराणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र कुँवर भोजराज के साथ 1516 ई0 में कर दिया। इस विवाह ने मीरा की सामाजिक स्थिति को बहुत ऊँचा उठा दिया क्योंकि उस समय मेवाड़ (चित्तौड़) का शासक सभी हिन्दू राजाओं का मुखिया या नेता माना जाता था।

परम्परानुसार मीरा विवाह के बाद ससुराल आते समय अपने साथ गिरिधर गोपाल की मूर्ति व सेविका ललिता को भी लेती आयी थीं। ललिता उनके साथ पूरे जीवन भर रही थी और मीरा के साथ ही मृत्यु को प्राप्त हुई। मीरा भोजराज की जीवितावस्था में भी मूर्ति का विधिवत् पूजन–अर्चन करती रहीं। पतिदेव के वियोग होते ही उन्होंने सारे लौकिक सम्बन्धों के बन्धन सहसा छिन्न–भिन्न कर दिये और चारों ओर से चित्त हटाकर अपने इष्टदेव के प्रति वे और भी अनुरक्त हो गई।

मीरा की भक्ति निरन्तर बढ़ती गई। वे भगवद् भजन में सदा लीन रहा करती ओर साधु संतों के पहुँचने पर लोक लज्जा का परित्याग कर उनका आदर सत्कार बड़ी श्रद्धा के साथ करने लग जातीं । वे ईश्वर के दर्शन के लिये बहुधा बाहर के मन्दिर में भी चली जाती और प्रेमावेश में आकर पैरों मे घुँघरू बाँध हाथों से करताल बजा–बजाकर भगवान के सामने गाने–नाचने तक लगतीं।मीरा का सम्पूर्ण साहित्य आत्माभिव्यक्ति प्रधान है। काव्य का सृजन उन्होंने स्वान्तःसुखाय हेतु किया है। भक्ति उनसे लिए केवल भक्ति है, शास्त्रीय विवेचन नहीं, प्रेम उनके लिए केवल प्रेम है कल्पना वैभव नहीं गीत उनके लिये केवल गीत हैं, रचना कौशल नहीं। मीरा के नाम से जो

सहस्रों पद विभिन्न स्रोतों से प्राप्त हुए हैं उनमें से केवल एक सौ तीन पद सर्वाधिक प्रामाणिक माने गये हें। मीरा एक जन्मजात कवयित्री थीं और ईश्वर के प्रति अपने तीव्र व गहरे प्रेम की सुन्दर अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने इस प्रतिभा का उपयोग किया। मीरा का काव्य जनसमाज में अत्यन्त लोकप्रिय रहा है। आज भी उसके गीत अमीर–गरीब दोनों के मध्य समान रूप से गाये जाते हैं।

सहजोबाई–चरणदासी सम्प्रदाय के प्रवर्तक चरणदास जी की शिष्या थी। वह राजस्थान में मेवात के डेहरा गॉव में पैदा हुईं और बाद में परीक्षितपुर में निवास करने लगी। सहजोबाई ने अपनी रचना 'सहजप्रकाश' में स्वयं को ढूसर कुल में उत्पन्न एवं अपने पिता का नाम हरिप्रसाद बताया है और दिल्ली के समीप परीक्षितपुर में अपना निवास स्थान बताया है। सहजोबाई दिल्ली में चरणदास जी की शिष्या के रूप में रहने लगीं। व एक कविता में गुरु सेवा एवं अपने द्वारा किये गये कठिन परिश्रम का उल्लेख करती हैं–"जैसे गेहूं का आटा पीसना, पानी लाना, झाड़ू देना, मिट्टी खोदना आदि।"

सहजो अनन्य गुरु भक्त थीं। वह कहती हैं कि एक व्यक्ति गुरु के मार्ग पर तभी चल सकता है जबकि वह एक बहादुर योद्धा क समान स्वयं को मृत्यु के डर से आजाद–स्वतन्त्र कर ले। वे गुरु को ईश्वर से भी ऊँचा मानती थीं। चरणदास जी के बावन शिष्य थे, उनमें सहजोबाई सर्वाधिक ख्यातिलब्ध थीं। वे एक उच्च कोटि की साधिका थीं। सहजो की कविताओं का संग्रह 'सहजोबाई की बानी' नाम से वेलविडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ है जिसमें इनकी रचना 'सहज प्रकाश' के अतिरिक्त 'सोलह तिथि निर्णय' 'सातवार निर्णय' एवं मिश्रित पद भी संकलित हैं। इस संकलन में सहजोबाई की जीवनी भी संक्षेप में दी गई है। सहज प्रकाश में सहजोबाई ने मुख्यतः निम्नलिखित प्रसंगों का वर्णन किया है। गुरु महिमा, साधु महिमा अंग एवं जीवन की दशायें सहजोबाई संत परम्परा की एक उत्कृष्ट कवित्री थीं, जिन्होंने ब्रह्म, जीव, जगत के वास्तविक स्वरूप का वर्णन किया। उनका ब्रह्म निर्गुण भी है और सगुण भी। यही ब्रह्म भक्तों की पुकार पर निर्गुण से सगुण होता है। संत परम्परा में उनका यह ब्रह्म विषयक विवेचन अपने में विरल है।

दयाबाई– चरणदास जी की शिष्या और सहजोबाई की गुरु–बहिन थीं। इनका जन्म विक्रमी संवत 1750–1775 अर्थात 1693–1718 ई0 के मध्य मेवात के डेहरा नामक गॉव में हुआ था। इनकी जाति भी ढूसर थी। ये गुरु चरणदास जी के सानिध्य में दिल्ली में ही रहती थी। दयाबाई के द्वारा लिखी हुई दो रचनायें प्राप्त होती हैं, 'दया–बोध और विनयमालिका।' दयाबोध में गुरुमहिमा, सुमिरन, साधु महिमा, प्रेम और वैराग्य विषय का विवेचन है और विनयमालिका में ईश्वर के विविध अवतारों द्वारा भक्त जनकल्याण एवं उनका उद्धार वर्णन का विवेचन है। इन रचनाओं के अध्ययन से यह सिद्व होता है कि ये उच्चकोटि की संत होने के साथ ही अत्यन्त ज्ञानी भी थीं और उस ज्ञान से ही उन्हें गुरु तत्व, ईशतत्व और दोनों के कृपा प्रसाद एवं अनुग्रह तत्व का वास्तविक बोध हो गया था। उनका यही बोध उस परम तत्व से एकात्मकता एवं संसार से वैराग्य का कारण बना। इन दोनों ही रचनाओं के द्वारा उन्होंने गुरु तत्व एवं निर्गुण–सगुण ब्रह्म की सापेक्षिक निर्भरता वर्णित की है, जो कि सभी भक्ति विषयक ग्रन्थों में विरल विषय है।

पश्चिम भारत का एक प्रमुख राज्य गुजरात है। अपने आकार, समृद्ध एवं उपजाऊ क्षेत्रों और अनुकूल जलवायु के कारण गुजरात को हमेशा से बहुमूल्य एवं विशिष्ट राज्य का दर्जा प्राप्त था। गुजराती महिला भक्त कवियों के भजन या गीत मौखिक परम्परा से प्राप्त हुए हैं तथा इन्हें अपने क्षेत्र में ही लोकप्रियता मिली है जहाँ ग्रामीण लोग उनके भजनों को अपने निरन्तर चलने वाले भजन सम्मेलनों में गाते हैं। निम्न जातियों के जो लोग शहर आ जाते हैं वे अन्य गीतों के साथ इन महिला कवियों के गीत भी गाना जारी रखते हैं। गुजरात में भक्ति धारा पन्द्रहवीं शताब्दी से प्रारम्भ होती है। इसके

प्रथम मुख्य सन्त कवि नरसिंह और मीरा ने गुजरात में भक्ति आन्दोलन को प्रसारित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया । यहाँ भक्ति की दोनों मुख्य धारायें देखी जा सकती हैं। सगुण भक्ति धारा नरसिंह तथा मीरा के साथ प्रारम्भ हुई और आगे चलकर वल्लभ सम्प्रदाय तथा स्वामी नारायण सम्प्रदाय के सहजानन्द स्वामी के प्रभाव में विकसित हुई। निर्गुण भक्ति धारा पन्द्रहवीं शताब्दी से प्रारम्भ होती है। इसके प्रथम मुख्य संत कवि नरसिंह और मीरा ने गुजरात में भक्ति आन्दोलन को प्रसारित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। यहां भक्ति की दोनों मुख्य धारायें देखी जा सकती हैं। सगुण भक्ति धारा नरसिंह तथा मीरा के साथ प्रारम्भ हुई और आगे चलकर वल्लभ सम्प्रदाय तथा स्वामी नारायण सम्प्रदाय के सहजानन्द स्वामी के प्रभाव में विकसित हुइ। निर्गुण भक्तिधारा का प्रसार कबीर के सीधे प्रभाव से हुआ और मौखिक परम्परा में वह आज भी लोकप्रिय है। गुजरात के कबीर पंथ के हिन्दू इस आधार पर अन्य पंथों से स्वयं को अलग मानते हैं। गुजरात क्षेत्र की अधिकांश महिला कवयित्री ब्राह्मण थीं। उन्होंने राम तथा कृष्ण के सगुण भक्ति के गीत गाये। उनमें से एक महिला रत्नबाई जुलाहा थीं तथा एक अन्य मराठी महिला राधाबाई थीं जिनकी जाति का उल्लेख नहीं मिलता। किन्तु काठियावाड़ और कच्छ की कोई भी महिला कवि ब्राह्मण नहीं थी यहां तक कि लोयल तथा अमरबाई जैसी कुछ निम्न जाति की थीं। सम्भवतः मन्दिर परम्परा से अपनी दूरी के कारण इनमें से सभी निर्गुण भक्ति के गीत गाती हैं। निरंजन गुरु के 'गंगासती' पर एक लेख में उल्लेख है कि एक दर्जन से अधिक रहस्यमय पंथ आज भी फैले हुए हैं। सभी पंथों के विस्तृत रहस्यमय दर्शन के लिए 'महापंथ' शब्द प्रयोग किया जाता है। वैष्णव सम्प्रदाय की तरह महापंथ सम्प्रदाय का कोई प्रवर्त्तक तो नहीं है लेकिन दावा किया जाता है कि इसका उद्भव शिव से हुआ है। एक पुरुष संन्यासी 'जती' कहा जाता है जती शब्द यती का बिगड़ा रूप है, यती का अर्थ है– संसार का त्याग करने वाला और महिला संन्यासी को 'सती' कहा जाता है। गुजरात में काठियावाड़ व कच्छ क्षेत्र की तीन महिला संत कवियों गंगासती, सती तोरल एवं सती लोयल सर्वप्रमुख हैं इनके जीवन तथा कार्य पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है क्योंकि इनकी रचनायें आज भी मौखिक परम्परा से जीवित हैं। वे एक शक्तिशाली महिला के रूप में, एक संत के रूप में तथा एक कवि के रूप में स्वयं में एक उपाख्यान बन गयीं। ये तीनों महिला कवि निर्गुण भक्ति के गीत गाती हैं। तीनों ही गुरु की महिमा का गुणगान करती हैं और यह बतलाती हैं कि गुरु के उपदेशों से ही मुक्ति मिल सकती है। वे आत्मज्ञान के अन्वेषक के लिए अच्छे लोगों के साथ के महत्व पर भी जोर देती हैं। इन तीनों महिला संतों की रचनाओं की एक सामान्य विशेषता यह है। कि उनकी सभी कवितायें किसी एक व्यक्ति को सम्बोधित की गयी हैं। गंगासती ने अपनी बहू पानाबाई को सम्बाधित किया है तथा तोरल एवं लोयल ने क्रमशः जेसल एवं लाखा को सम्बोधित किया है जो उनके प्रेमी हैं। इनके अतिरिक्त गौरीबाई तथा रत्नबाई नाम की दो अन्य महिला संत कवि भी इस परम्परा में रही है, यद्यपि ये सगुण भक्ति कवयित्री थीं। इनके साथ ही सती रूपा, सती देवल, सती अमरबाई, दिवालीबाई एवं कृष्णाबाई का भी उल्लेख मिलता है। गंगासती, का समय लगभग सत्रहवीं शताब्दी का है। वह राजपूत बाघेला वंश की कन्या थीं। भक्ति के संस्कार बचपन से ही माता–पिता की ओर से मिले थे। इनके माता–पिता का घर साधु–संतों के लिए आश्रय स्थान और तीर्थधाम जैसा था। गंगा ने छोटी सी उम्र में ही दीक्षा पाई थी ताकि आगे बढ़कर उत्तम साधक बन सके। उनका विवाह सौराष्ट्र क्षेत्र के भावनगर के

समीप समढियाला नामक गाँव के गोहेल कहलुभा के साथ हुआ था। कहलुभा के माता–पिता भी ईश्वर भक्त थे। इस तरह गंगा सती के लिए दोनों ओर से ईश्वर की भक्ति के द्वार खुले हुए थे। गंगासती ने अपनी बहू पानाबाई को सम्बोधित करते हुए एक भजन समूह की रचना की और 54वें दिन अपने पति की समाधि के पास गंगासती ने भी महासमाधि ले ली। गंगासती अपने भजनों में आध्यात्मिक अनुभवों की उन अवस्थाओं का वर्णन करती हैं जिन अवस्थाओं से पानाबाई को गुजरना है। इनके अनुसार पूर्ण आध्यात्मिक/अलौकिक अनुभूति के लिए यौगिक अभ्यास की आवश्यकता होती है। कर्मकाण्डों एवं विभिन्न पंथों के सिद्धान्तों का इसमें उपयोग नहीं है। गंगासती के कई भजनों में योग मार्ग की पारिभाषिक शब्दावली एवं विशिष्ट संज्ञाएं देखने को मिलती हैं, जैसे कि सुरता, नाभिकमल, शून्य, ध्यान, धारण, त्राटक, इंगला–पिंगला, समाधि आदि। इससे प्रतीत होता है कि गंगासती स्वयं योग मार्ग की समर्थ साधिका थीं। गंगासती ने अपनी आध्यात्मिक स्थिति का और ऐसी स्थिति प्राप्त करने के लिए कैसी साधना करनी चाहिए उसका वर्णन संगीत, लय, प्रतीकात्मक भाषा, भाव प्रयोग एवं भाव कल्पना के संयोजन से अपनी लोकभाषा में सरल ढंग से किया है, जिसके कारण उनके भजन, उनकी भक्ति और स्वयं गंगासती गुजरात की संत परम्परा में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। तोरल एक काठी महिला थीं। इनका विवाह कच्छ के अंजार गाँव के सांसतिया से हुआ था। काठी वर्ग के कारण ही सौराष्ट्र को काठियावाड़ कहते है। काठी वर्ग में शासक, सैनिक और जागीरदार आते हैं। ये राजपूतों से निम्न जाति के माने जाते हैं यद्यपि ये भी योद्धा हैं। तोरल नाथपंथ की अनुयायी थीं। जेसल कच्छ का एक जडेजा राजपूत डाकू था जिसने ताती–तोली तथा तोरल को प्राप्त करने का साहस किया। 'ताती' एक प्रसिद्ध तलवार थी, 'तोली' एक प्रसिद्ध घोड़ी थी और 'तोरल' एक विख्यात स्त्री थी जिसका कारण उसकी सुन्दरता तथा धर्मपरायणता थी। तोरल व जेसल की प्रेम तथा आध्यात्मिक मार्ग के अनुसरण की कहानी तब शुरू होती है जब वे नाव से खाड़ी पार करके कच्छ जा रहे होते हैं। एक समुद्री तूफान उठता है और नाव को हिलाता है। जैसे ही तूफान तीव्र हुआ जेसल मृत्यु विचार से भयभीत हो गया। वह बुरी तरह घबरा गया किन्तु यह नहीं समझ पा रहा था कि तोरल क्यों इतनी शान्त बैठी है जबकि नाव लगभग डूबने ही वाली थी। तोरल ने उससे कहा कि भय किस बात का, प्रभु रक्षा करेंगे। ऐसा माना जाता है कि तब तोरल ने उसे भजनों द्वारा सम्बोधित किया जिनसे यह सन्देश मिलता है कि सांसारिक वस्तुओं में आसक्ति प्रयोजन विहीन है और मनुष्य को अपने जीवन का सदुपयोग करना चाहिए। तोरल व जेसल के सभी गीत एक दूसरे को सम्बोधित है। इन गीतों की संख्या अधिक नहीं हैं किन्तु मौखिक परम्परा में अत्यधिक लोकप्रिय हैं। उनकी पारम्परिक संगीतमय रचनायें भी श्रेष्ठ हैं। तोरल की अन्तिम कविता एक 'आरध' मृत तथा दफनायें गये जेसल को आमन्त्रण है। कच्छ के अंजार गाँव में जेसल–तोरल का समाधि स्थल है जो एक तीर्थ स्थान है। इस प्रकार सती तोरल एक ऐसी नारी हैं जिन्हें समय/काल का प्रभाव लुप्त नहीं कर सका बल्कि काल ने उसे संवारा है और अमरत्व दे दिया है। लोयल–का जन्म लोहार जाति में खंभालिया ग्राम में हुआ था। इसके पिता महापंथी थे। घर पर भजन–कीर्तन का आयोजन होता रहता था, जिसमें अनेक साधु–संत भाग लेते थे। अतः बचपन से ही लोयल ने महापंथ परम्परा के संस्कारों को ग्रहण किया। लोयल असाधारण रूप से सुन्दर थीं। उसका प्रेमी लाखा एक अहीर था। अपने गुरु की आज्ञा से लोयल ने अनवरत भजन गाये।

ISSN-2394-6326
Journal de Brahmavart

कहा जाता है कि एक रात्रि में लोयल ने उसके लिये 144 भजन गाये। प्रत्येक भजन लाखा को सम्बोधित है। जिस तरह तोरल ने जेसल के जीवन में भक्ति भाव के प्रभाव से परिवर्तन किया उसी तरह लोयल ने अपने भजनों द्वारा लाखा के जीवन की दिशा बदल दी। लोयल भी गंगासती व तोरल की तरह इस जीवन की निःस्सारता को बताती हैं तथा सांसारिक अधिकारों तथा सम्पत्ति में आसक्ति के विरुद्ध परामर्श देती हैं। वे अपने गुरु की महिमा का गुणगान करती हैं। लोयल के अनेक भजन पारम्परिक भजन गायकों द्वारा संरक्षित हैं। इनके भजनों का प्रत्येक खंड सामान्यतः 'जी रे लाखा.....' से प्रारम्भ होता है।

गौरीबाई, गुजरात की सगुण नारी संत परम्परा में एक मात्र सुप्रसिद्ध कवयित्री थीं। गुजरात की इस संत कवयित्री के विषय में यह सौभाग्य है कि हम उनके जीवन व कार्य की सही सूचनाओं को प्राप्त कर सकते हैं। पिछली शताब्दी में जब गौरीबाई का जीवन चरित्र लिखा गया तब उनके परिवार के दो सदस्य जीवित थे, जो उनके पूर्वज संतों के विषय में भी कुछ तथ्य बताने में समर्थ थे। यहाँ भी तथ्यों के साथ अनेके लोक कथायें जुड़ी हुई हैं और इसीलिए एक प्रामाणिक जानकारी प्रस्तुत करना आसान कार्य नहीं हैं।

गौरीबाई का जन्म 1759 ई0 के लगभग गिरिपुर में हुआ था। गिरिपुर को डूँगरपुर के नाम से भी जाना जाता है और यह गुजरात व राजपूताना की सीमा रेखा पर स्थित वगद में है। गौरीबाई बहुत ही बुद्धिमती थीं। उस समय बालिकाओं के लिये विद्यालय नहीं थे, किन्तु उन्होंने शीघ्र ही अपने घर में ही लिखना–पढना सीख लिया। जो कार्य एक विधवा के लिये उचित माने जाते थे गौरी अपना समय उन्हीं कार्यों में व्यतीत करती थी, जैसे घरेलू देवताओं की पूजा करना, भक्तिपरक गीत गाना तथा पवित्र साहित्य पढ़ना। सर्वशक्तिमान ईश्वर पर उनका विश्वास मजबूत और अडिग था। गौरी ने ईश्वर की स्तुति में कुछ कविताओं की रचना प्रारम्भ को। गौरीबाई की कवितायें अधिकतर गुजराती भाषा में है फिर भी इनमें कुछ राजस्थानी शब्द भी मिलते हैं क्योंकि उनका जन्म स्थान दोनों राज्यों की सीमा रेखा पर है। उन्होंने हिन्दी में भी कुछ गीतों की रचना की जो सम्भवतः गोकुल, वृन्दावन और बनारस के दीर्घ प्रवास का परिणाम था। गौरीबाई एक कविता में कहती हैं कि 'कनक कुण्डल अन्तर नहीं'। अर्थात आत्मा तथा परमात्मा में मूल तत्व एक ही है जिस प्रकार शुद्ध सोना तथा कर्णाभूषण में कोई तात्विक अन्तर नहीं है। इस प्रकार कहते हुये वे नरसिंह मेहता तथा मीरा के समान अपन विचारों को प्रकट करती हैं। कभी–कभी वे मौलिक ढंग से सोचती हैं जब कहती हैं कि–'घाट–घाट माँ गिरिधर वस्यो, ज्यों फूलन की बास' अर्थात फूलों की सुगन्ध की तरह गिरिधर का अनुभव कहीं भी किया जा सकता है। गौरी मुख्य रूप से सगुण भक्ति के विशुद्ध 'प्रेम लक्षण' गीतों की तरह कृष्ण की विभिन्न विशेषताओं का वर्णन नहीं करतीं अपितु भक्तों के द्वारा अनुभव किये जाने वाले अविश्वसनीय आनन्द के विषय में बतलाती हैं उनकी कविताओं में सांसारिक विषयों से विरक्ति और ईश्वर के प्रति अनुराग सर्वत्र व्याप्त है। रत्नबाई–गुजरात में नारी संत परम्परा में रत्नबाई के विषय में बहुत कम जानकारी प्राप्त है। इनका समय लगभग तेरहवीं – चौदहवीं शताब्दी में माना जाता है। साहित्यिक इतिहास में इनके नाम का उल्लेख उस समय की सुप्रसिद्ध महिला संत कवियों में होता है। शाही परिवार की मीराबाई की स्थिति के विपरीत रत्नबाई सूत कातकर अपना जीवनयापन करती थीं। चूंकि भक्ति आन्दोलन प्राथमिक रूप से शिल्पकारों, दस्तकारों और छोटे व्यवसायियों का आन्दोलन था, अतः एक जुलाहे के लिए कविता की रचना करना कोई असाधारण बात नहीं थी।

लालदेद या लल्ला– नारी संतों में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। ये चौदहवीं शताब्दी की कश्मीर की रहस्यवादी संत कवयित्री थीं। इन्हें भारत के मध्यकाल के रामानन्द, कबीर और पन्द्रहवीं सदी के दूसरे अन्य संतों का

ISSN-2394-6326
Journal de Brahmavart

अग्रदूत कहा जाता है। लालदेद के अन्य कई नामों में लल्लेश्वरी तथा लल्ला 'आरिफ' भी प्रसिद्ध है। ये आज भी हिन्दू तथा मुस्लिम दोनों ही धर्मों के कश्मीरवासियों की स्मृति एवं भाषा दोनों में अमर है। इनके वाक् या पद्य ग्रामीण गायकों के लिये खजाना हैं। इनके पद्य सूफी सम्मेलन या आध्यात्मिक साधकों के सम्मेलन के प्रारम्भ में 'सूफियाना कलाम' के रूप में कश्मीरी संगीत शैलियों में गाये जाते हैं।

लालदेद का सर्वप्रथम उल्लेख बाबा दाउद मिश्कती की 'असरार–उल–अबरार' 1654 ई0 में मिलता है। इनकी जन्म तिथि के विषय में अधिक विवाद है। एक सुप्रसिद्ध फारसी सूफी संत सैयद अली हमदानी ने 1379–80 ई0 से 1385–86 ई0 तक की अवधि में कश्मीर की यात्रा की, ये लल्ला के समकालीन थे। अतः यह निश्चित होकर कहा जा सकता है कि लालदेद का समय चौदहवीं सदी है। सम्भवतः इनका जन्म 1330 ई0 के लगभग श्रीनगर से लगभग चार मील दक्षिण–पूर्व स्थित पांड्रेठन नामक स्थान पर ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उस समय वहाँ पर उद्यानदेव का राज्य था और दिल्ली में मोहम्मद बिन तुगलक अपनी गद्दी पर आसीन था। इन्होंने अपने गुरु सिद्ध मोल से आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त की। कम आयु में ही इनका विवाह पांपर ग्राम के एक ब्राह्मण निकाभट्ट से हुआ था। लल्ला के पति का व्यवहार भी इनके प्रति कभी अनुकूल नहीं रहा और यही कारण था कि ऐसे ही किसी मुद्दे पर लल्ला ने अपने पति का घर छोड़ दिया। तत्पश्चात उन्होंने शैव सिद्ध श्रीकण्ठ से शिक्षा ग्रहण की। लालदेद प्रायः ईश्वर को शिव के रूप में पुकारती हैं और कभी–कभी 'सहज' कहती हैं जिसका अर्थ है आत्मचेतना। इनके अनेक पदों में यह बिन्दु आता है कि ईश्वर को अपने भीतर ही पाया जा सकता है। इनके पदों में आत्मानुभव आत्मज्योति की खोज के लिये लम्बी पीड़ा का वर्णन है।

लालदेद की रचनायें कश्मीरी भाषा में हैं और उन्हें एकत्रित करके संग्रहों के रूप में प्रकाशित किया गया है। मूल कश्मीरी में इनका संग्रह 'लालदेव–ए–हिन्द वाक' के नाम से मिलता है। लल्ला का वाक् चार पंक्तियों का पद होता है जो स्वयं में पूर्ण होता है। इन्हें गाया जा सकता है, किन्तु नानक और मीरा के पदों की तरह नहीं। ये पूरी तरह संगीत बद्ध नहीं हो पाते। ये अनेक उत्तर भारतीय संतों के पदों की अपेक्षा उपनिषदों के मंत्रों और सूक्तों के अधिक निकट हैं। इनका उद्देश्य श्रोता को भावनाओं के प्रवाह मात्र में बहाना नहीं अपितु विचारों का संप्रेषण है। लल्ला ने कहीं भी श्रृंगारिक उपमाओं का प्रयोग नहीं किया। लोकभाषा का प्रयोग करते हुये भी उसके वाक् में वर्णित धर्म दर्शन सरल नहीं है, इसमें अनेक सूक्तियाँ हैं।

लल्ला का विचार है कि शारीरिक आवश्यकताओं को पूरा करना चाहिये किन्तु मानस हृदय/मन में आत्मतत्व का ही विचार होना चाहिये। लल्ला मूर्ति तथा मंदिर दोनों को पत्थर से अधिक नहीं मानती हैं। वे कहती हैं कि 'हे ईश्वर साधक आपने जो मंदिर तथा देवता इन दो पदार्थों को पूजा के लिये पृथक–पृथक बनाया है, वस्तुतः वे दोनो पदार्थ प्रस्तर खण्ड से भिन्न नहीं हैं। देव तो अमेय तथा चित्स्वरूप है, अतः वह सर्वव्यापक है।' लालदेव सार्वभौम आत्मा परब्रह्म का वैयक्तिक आत्मा के साथ तदात्म्य बताती हैं। वे कहती हैं कि परब्रह्म को प्राप्त करने के लिये तीर्थों में भटकना व्यर्थ है, वह तो अन्तःकरण में ही विद्यमान है। आवश्यकता तो बस उसे देखने की है। जीवन की नश्वरता क्षणभंगुरता एवं जीवन मृत्यु के शाश्वत सम्बन्ध पर लालदेद बहुत ही विचारपूर्ण वाणी से अपनी बात कहती हैं। ब्रह्मत्व एवं आत्मतत्व का निरूपण वे जिस सहज ढंग से कर देती हैं वह बड़े–बड़े ज्ञानियों के लिये भी विरल है। उनकी प्रज्ञा इतनी प्रखर एवं उर्वर है कि सम्पूर्ण मध्यकाल में उनकी रचनायें अपने आप में अनूठी है। लल्ला के पद ग्रामीण अंचलों में आज भी गाये जाते हैं। रूप भवानी– कश्मीर प्रान्त की संत कवयित्री थी। लालदेद की परम्परा में आने वाली वे दैवीय गुणों से सम्पन्न थी। कश्मीरी ब्राह्मण माधवधर

इनके पिता थे जो स्वयं धार्मिक एवं दार्शनिक तत्वों से अनुप्राणित थे। इनका विवाह निकट के ही सप्रू परिवार में हुआ पति का नाम हीरानन्द सप्रू था। उनका वैवाहिक जीवन सुखी नहीं था। रूप भवानी के पति एवं सास सोपकुंज का व्यवहार उनके प्रति प्रतिकूल था। रूप भवानी के जीवन परिचय से स्पष्ट है कि वे दैवीय गुण सम्पन्न महिला संत थीं। वे जीव ब्रह्म, आत्मा परमात्मा के वास्तविक और सापेक्षिक संबंधों के रहस्यों से भली भांति परिचित थीं। इनकी रचनायें सत्य के साक्षात्कार का रहस्य उद्घाटित करती हैं। आत्मा का स्वरूप क्या है यह आज भी तत्ववेत्ताओं के बीच गम्भीर चिंतन का विषय है इसी आत्मा का स्वरूप निर्धारण रूप भवानी ने इन रचनाओं में किया है। इस प्रकार रूप भवानी ने आत्मा, ब्रह्म और आत्मस्थ व्यक्ति के स्वरूप की विवेचना करके स्वयं के दृष्टिकोण का परिचय दिया है। आत्मा–परमात्मा के विवेचना विषयक सिद्धान्तों से परे उनका विलक्षण सिद्धान्त है।

बावरी साहिबा– संत परम्परा में अप्रितम स्थान रखती हैं। वे बावरी पन्थ की चतुर्थ संत थीं। बावरी पंथ को संत सम्प्रदायों में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इस पन्थ के प्रवर्त्तक रामानन्द जी थे। बावरी साहिबा सम्राट अकबर की समकालीन कही जाती हैं और इनका समय लगभग 1542–1605 ई0 माना जाता है। बावरी, मयानन्द की शिष्या थीं। रामानंद के शिष्य का नाम दयानंद था तथा उनके शिष्य का नाम मयानंद। बाल्यकाल से ही आध्यात्म में विशेष रूचि के कारण सत्यानुभूति और ब्रह्म की साधना में यत्र–तत्र भटकते हुये इन्हें मयानंद ही सबसे योग्य संत प्रतीत हुये और इन्होंने उन्हें अपना गुरु स्वीकार कर लिया। बावरी साहिबा की रचनाओं में प्राप्त अजपा–जाप, सुरति, कमल, डोरी, इत्यादि शब्दों के आधार पर इन्हें निर्गुण शब्दमार्गी साधिका कहा जा सकता है। संख्यादृष्टि से कम होते हुये भी इनके पदों का उच्च आध्यात्मिक स्तर इन्हें उच्चकोटि की संत कवयित्री सिद्ध करता है और संत मत में इनके महत्व व प्रभाव को भी रेखांकित करता है। मोल्ला– आंधप्रदेशकी एक प्रमुख संत कवयित्री हैं। इनका जन्म 16वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में एक साधारण कुम्हार परिवार में हुआ था इनके पिता का नाम केशना केशव था। इनका जन्म स्थान पन्नार नदी के बायें किनारे पर स्थित नैल्लूर से कुछ मील उत्तर में गोपावरम गाँव था। अब उस गाँव का नाम पदुगुपाडु है। वे विजयनगर राजा कृष्णदेवराय 1509–1530 ई0 की समकालीन थीं। मल्लिकार्जुन एवं मल्लिकांबा शिव–पार्वती की परम भक्त मल्ला की दीक्षा वीरशैव मठ में हुई थी। ये आजीवन ब्रह्मचारिणी थीं, संन्यास धर्म में दीक्षित होकर इन्होंने दिव्य आत्मिक अत–रामायण की रचना की।

मोल्ला रामायण में अपने देवता की स्तुति में लिखे गये 138 श्लोक हैं, जो छः काण्डों में विभक्त हैं। अपनी रामायण में मोल्ला ने सीता के बचपन उसकी जीवन्तता उसकी शक्ति एवं प्रसन्नता का वर्णन किया है। उसने अपनी रामायण के स्वयंवर–काण्ड में सीता द्वारा अनेक योग्य राजकुमारों के मध्य पति चुनने की स्व तंत्रता पर हर्ष व्यक्त किया है। चन्द्रबती की रामायण सीता की कथा है जो कि गर्भावस्था में अपने पति के घर से निष्कासित कर दी जाती है। रामायण की पृष्ठभूमि सीता की पीड़ा व भय के चारों ओर रची गई है। नवनीता देव सेन ने चन्द्राबती और आंध्र प्रदेश की महिला संत कवि मोल्ला की तुलना करते हुये पाया है कि चन्द्रबती की रामायण उतनी देवकथा के रूप में नहीं लिखी गई। यह एक मानवीय चरित्रों का संगह है जिसका प्रस्तुतीकरण धर्मनिरपेक्ष सा है। इस प्रकार चन्द्रबती नें शास्त्रीय आदर्श से दूर हटने की क्षमता दिखायी है।

नारी संतों का कृतित्व उनके स्वयं के सत्य की प्रसन्नता भरी खोज है, यद्यपि यह

ISSN-2394-6326
Journal de Brahmavart

मार्ग अधिकतर स्त्रियों के लिये प्रतिबंधित मार्ग से हटकर था। उनकी स्मृति पवित्र निःस्वार्थ प्रेम की एक झलक है परन्तु वे अपने व्यक्तित्व एवं कविताओं से प्रसिद्धि को प्राप्त हुई जो उनकी गहरी बुद्धिमत्ता और दार्शनिक विचारों का प्रतिनिधित्व करती हैं। इन नारी संतों ने सामाजिक वर्जनाओं को तोड़कर समाज को अपने अस्तित्व बोध से परिचित कराया। इन नारी संतों में से अनेक का कार्य भारतीय संस्कृति में न केवल भीतरी सतह पर स्थापित हुआ है, अपितु उसने इसकी मुख्य धारा में भी अपना स्थान बनाया है। यह भी महत्वपूर्ण तथ्य है कि इन नारी संतों को जिन्होंने स्थापित रीति–रिवाजों का उल्लंघन किया, उन्हें नास्तिका तथा पागलों के समान दुत्कारा ही नहीं गया, अपितु उनके जीवनकाल में ही उनकी पूजा की गई तथा उन्हें जीवित तथा विकसित होती हुई परम्पराओं में स्थापित किया गया। यह हमारी सांस्कृतिक परम्पराओं का एक सकारात्मक पहलू है जो यह प्रदर्शित करता है कि हमारी संस्कृति उन महिलाओं को भी सामाजिक स्थान उपलब्ध कराने में सक्षम है जो असाधारण रूप से योग्य एवं साहसपूर्ण हैं भले ही उन्होंने पूरी तरह से स्त्री धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों (विवाह तथा मातृत्व) का उल्लंघन किया हो।

इस प्रकार पश्चिम भारत की नारी संत–कवि परम्परा में वहाँ की संस्कृति के मूल तत्वों का समावेश पूर्णतः विद्यमान है। नारी संतों का साधन और साध्य दोनों ही ईश्वरीय एवं गुरु भक्ति थी, लेकिन उद्देश्य रूप में नारी के गौरव को स्थापित करना था।

A sand stone figure lying under a tree outside Shiv Temple, Karchhalipur A.S.I. Protected Monument